णाण-सार-

[ज्ञान-सार]

मूल गाथा, संस्कृत छाया, भाषा छन्दबद्ध और
भाषा टीका सहित।

—पं० तिलोकचन्द जैन केकड़ी नि०

"जैनमित्र" के ४४ वें वर्षके ग्राहकोंको
स्व० सेठ कालीदास मगधाभाई
(हवका) के स्मरणार्थ भेट।

—दिगम्बर जैनपुस्तकालय, सूरत।

श्रीपद्मसिंह मुनिराजकृत—

णाणसार (ज्ञानसार)

मूलगाथा, संस्कृत छाया, भाषा छन्दबद्ध और भाषाटीका सहित।
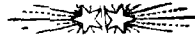
भाषाटीकाकार :

पं० त्रिलोकचन्दजी जैन, केकड़ीनिवासी।
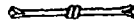
प्रकाशक :

मूलचन्द किसनदास कापडिया,

दिगम्बर जैनपुस्तकालय, कापड़ियाभवन, सूरत।

श्री० स्व० सेठ कालीदास अमथाभाई-डबका (बड़ौदा) नि० के स्मरणार्थ उनके पुत्र श्री० सेठ सौभाग-चंदजीकी ओरसे 'जैनमित्र' के ४४ वें वर्षके ग्राहकोंको भेंट।

प्रथमावृत्ति] कार्तिक वीर सं० २४७० [प्रति १५००

"जैनविजय" प्रिन्टिंग प्रेस-सूरतमें मूलचन्द किसनदास कापड़ियाने मुद्रित किया।

मूल्य—छह आना।

प्रस्तावना।

दि० जैन समाजमें पूर्व समयमें अनेक मुनिराज परम अध्यात्मज्ञानी होगये हैं उनमेंसे श्री पद्मनन्दी मुनि महाराज भी एक थे। आपने विक्रम संवत १०८६ श्रावण सुदी ९ को अम्बड नगरमें ठहरकर श्री **णाणसार** अपर नाम **ज्ञानसार** नामक ग्रंथकी ६३ गाथाओंमें रचना की थी, जो सेठ माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमालामे सस्कृत छाया सहित प्रगट हो गया है, लेकिन उसकी भाषाटीका अबतक प्रगट नहीं हुई थी।

करीब १॥ साल पूर्व हमको पं० तिलोकचंदजी पाटनी, मदनगज नि० द्वारा मालूम हुआ कि उनके पास णाणसारकी छन्दबद्ध और भाषाटीका हस्तलिखित है जिसकी रचना (स० १९७० कार्तिक वदी २ को उन्होंने केकडी (अजमेर) में की थी) अत: हमने इस भाषाटीकाकी कोपी उनसे मंगाई जो उन्होंने हमारे पास भेज दी थी, वह आज प्रगट की जाती है।

यह णाणसार या ज्ञानसार अध्यात्मिज्ञानका भंडार है। अत: इसकी स्वाध्याय करके अध्यात्मक ज्ञानकी निधि प्राप्त कीजिये यही निवेदन है। इसमे गाथा व संस्कृत छायाके बाद चौपाई छंदमें जो रचना की गई है, वह सरल व सुन्दर है, फिर उसपर अर्थ और कहीं २ विशेष खुलासा भी किया गया है। अत: इस आध्यात्मिक ग्रन्थका भाव समझनेमें कठिनाई नहीं होगी, ऐसा हमारा अनुमान है।

इस ग्रंथको 'जैनमित्र' के ४४ वे वर्षके ग्राहकोंको उपहारमें देनेकी जो व्यवस्था श्री० अध्यात्म-प्रेमी **सेठ सोभागचन्द कालीदासभाई डबका** (पादरा, बडौदा) निवासीने करदी है उसके लिये आपका जितना उपकार माना जाय कम है। इस पुस्तकमें आपके पिता स्व० सेठ

कालीदास अमथाभाईका संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है, क्योंकि आपके अन्त समयके २०००) के दानमेंसे ही यह शास्त्रदान होरहा है।

इस पुस्तककी कुछ प्रतियां सेठ सोभागचन्दजीने अलग भी निकलवाई है तथा हमने कुछ प्रतियां विक्रयार्थ भी निकाली हैं। आशा है ऐसी आध्यात्मिक पुस्तकका शीघ्र ही प्रचार हो जायगा।

इस पुस्तकके भाषाकार पं० त्रिलोकचन्दजी (केकडी) ने श्री योगींद्रदेव कृत परमात्म-प्रकाशकी भाषा छन्दबद्ध रचना भी की है। उसकी भी नकल हमारे पास पं० तिलोकचन्दजीने भेज दी है। जो कोई दानी मिल जानेपर प्रगट करनेकी हमारी अभिलाषा है। अतः ऐसे दानी इस विषयमें हमसे पत्रव्यवहार करें।

सूरत,
वीर सं० २४७०
कार्तिक सुदी १
ता० २९-१०-४३

निवेदक—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
प्रकाशक।

स्व० सेठ कालीदास अमथाभाई-डबकाका
संक्षिप्त परिचय।

बडौदा राज्यके बड़ौदा प्रांतके पादरा तालुकामें मही नदीके तटपर डबका नामका गांव है। वहांपर दि० जैन नृसिंहपुरा जातिमें संवत १९१२ वैशाख वदी १३ रविवारके दिन रात्रिको १२॥ बजे आपका जन्म हुआ था। आपके पिताका नाम शाह अमथाभाई बहेचरदास था और माताका नाम मोतीबाई था। बड़े भाईका नाम त्रिभोवनदास अमथाभाई था, जिनको बाल्यावस्थामें पिताका स्वर्गवास होनेसे घरकी व्यवस्थाका काम करनेकी फरज पड़नेसे और गांवमें दूसरी भाषा (अंग्रेजी) का प्रबंध नहीं होनेसे सिर्फ गुजरातीका आपने अभ्यास किया था। लेकिन वाचनकार्य अधिक होनेसे हिंदी भाषा और सरल संस्कृत भी आप समझ सकते थे। आपका प्रथम विवाह भडौच जिलेके वागरा गांवमें मोतीलाल हरजीवनकी बहिन पार्वतीके साथ हुआ था और द्वितीय विवाह भडौच जिलेके 'अणोर' गांवके शाह शिवलाल रायचंदजीकी बहिन उमियाबाई (जमनाबाई) के साथ हुआ था।

किसी भी व्यक्तिकी महत्ता धनाढ्य होनेमें या विविध भाषाके विद्वान होनेमें नहीं है, किन्तु मोक्षमार्गका यथार्थ बोध प्राप्त करनेमें है। उस समय गुजरातमें देव, गुरु, धर्म और सप्ततत्वका यथार्थ ज्ञानी श्रद्धानी शायद कोई भी नहीं था। सिर्फ गतानुगतिका पूजा, व्रत, उपवास, विना हेतु समझे बाह्य क्रियाकांडमें मचा हुआ था। यथार्थ

श्रद्धान, ज्ञानादि प्राप्त करनेका कोई निमित्त नहीं था। ऐसे समयमें उनके समागममें आनेवालोंपर छाप पड़े ऐसा कोई ज्ञान-अध्यात्मज्ञान आपने संपादन किया था। उनके अध्यात्म प्रेमसे आकर्षित होकर श्वेताम्बर मुनि श्री० हुकमचंद्रजीने अपने बनाये हुए अध्यात्म प्रकरण और ज्ञान प्रकरण ये दो ग्रन्थ आपको भेट किये थे। स्वाध्याय करनेकी रुचि होनेसे दिगम्बर जैन धर्मके महत्वपूर्ण छपे हुए सभी ग्रन्थ आप मंगाया करते थे। वैसे ही श्वेताम्बरोंके वेदांतके और बौद्धधर्मके भी ग्रन्थ मंगाया करते थे। इससे आपके घरमें छोटासा पुस्तकालय बन गया था। मासिक पत्रोंमें उनको 'जैन हितैषी' खास प्रिय था। उसमें भी प्रेमीजीके लेख आप बहुत रुचिपूर्वक पढ़ते थे।

जब जब संसारी कामोंसे निवृत्ति मिलती थी तब २ आप अपने मंगाये हुए तात्विक ग्रंथ पढ़ते थे, या बनारसीदासजी कृत समयसारके काव्य; बनारसीदासजी, भूधरदासजी, भगवतीदासजी, आनन्दघन, हीराचंदजी आदिके बनाये हुए खास करके अध्यात्मिक पद गाते थे। सम्मेदशिखर, गिरनार, पावागढ़ आदि तीर्थक्षेत्रोंकी यात्रा आपने की थी। इस तरह जीवन व्यतीत करते हुए आपने संवत १९८८के आश्विन शुक्ल चतुर्दशीकी रात्रिके १० बजे णमोकार मंत्रका उच्चारण करते २ देह छोड़ दी थी व देह त्यागके पहले कई दिन पूर्व अपनी पूर्ण सावधानीमें आपने जैनोंकी भिन्न२ संस्थाओंको २०००) का दान दिया था। आपके सुपुत्र सेठ सौभाग्यचंद भी अपने पितातुल्य बड़े अध्यात्मप्रेमी व दानी हैं। —**प्रकाशक।**

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

श्रीपद्मसिंहमुनिराजकृत--

ज्ञानसार (णाणसार)

मूल गाथा, संस्कृत छाया, भाषा छन्दोबद्ध व भाषाटीका सहित।

सिरिवड्ढमाणसामी सिरसा णमिऊण कम्मणिद्दहणं ।
वोच्छामि णाणसारं जह भणियं पुव्वसूरीहिं ॥ १ ॥

श्रीवर्द्धमानस्वामिनं शिरसा नत्वा कर्मनिर्दहनं ।
वक्ष्यामि ज्ञानसारं यथा भणितं पूर्वसूरिभिः ॥ १ ॥

चौपाई ।

कर्मनाश अविचल थिति पाई, स्वामी वर्द्धमान सिर नाई ।
पूर्वाचार्य कथन अनुसारी, ज्ञानसार वर्णूं सुखकारी ॥ १ ॥

भाषाकारका मंगलाचरण ।

भूत भविष्यत अभीके, नमूं केवली सर्व ।
द्वादशांग श्रुतको नमुं, नमुं गुरूगण गर्व ॥ १ ॥
ज्ञानसार प्राकृत रचा, पद्मसिंह मुनींद ।
रचिहूं भाषा चौपाई, जजि तस पद अरविंद ॥ २ ॥

अर्थ—कर्मोंके नाश करनेवाले श्री वर्द्धमान जो अंतिम तीर्थंकर तिनको उत्तम अंग जो मस्तक ता करि नमस्कार करि जैसे पूर्वाचार्योंने वर्णन किया उस ही अनुक्रम करि ज्ञानसार नाम ग्रंथको कहूंगा।

भावार्थ—ज्ञानावरणी दर्शनावरणी मोहनीय अंतराय, यह च्यार तो घातिया कर्म और वेदनीय आयु नाम गोत्र यह च्यार अघातिया, इन सब आठों कर्मोको नष्ट करि अविचल स्थान ताहि प्राप्त हुए। अतः अनंतज्ञानको प्राप्त हुवे कारण जिस मार्गसे उन्होंने ज्ञानविभव पाई उसही मार्गका वर्णन किया जायगा। अतः इस ग्रन्थकी आदिमें वो ही आराध्य हैं।

प्रश्न—इस ही मार्गसे ही अनंत जीवोंने ज्ञानविभव प्राप्त करी है उनको क्यों नहिं नमस्कार किया?

उत्तर—अंतिम तीर्थंकरसे ही पंचमकालमें धर्मकी परिपाटी चल-रही है। इस समयके जीवोंके लिये तो विशेष उपकारी वही हैं। अतः वह ही मुख्य आराध्य हैं।

आगे—यह जीव संसार परिभ्रमण क्यूं करै हैं सोई कहै हैं—

जीवो कम्मणिबद्धो चउगइसंसारसायरे घोरे।
बुड्डई दुक्खक्कंतो अलहंतो णाणवोहित्थं ॥ २ ॥

जीवः कर्मनिबद्धः चतुर्गतिसंसारसागरे घोरे।
ब्रुडति दुःखाक्रान्तो अलभमानः ज्ञानबोधित्वम् ॥ २ ॥

चौपाई।

कर्मबंधसे यह अज्ञानी, ज्ञान नावको नहिं लहि प्राणी।
दुःखयुक्त भवसागर मांही, चउ गतिमें डूबै सक नांहि ॥ २ ॥

अर्थः—ज्ञानावरणादि कर्मोंसे बन्धा हुआ यह जीव ज्ञानरूपी नावको नहीं पाकर नरक तिर्यंच मनुष्य देव इन च्यार गतिरूप संसार-समुद्रमें डूबे दुःखी होय है।

भावार्थ—अनन्तानन्त काल तांई तो यह प्राणी मूढ़ मिथ्यातके उदय अज्ञानरूप ही रहा, जहां अक्षरके अनंतवें भाग ज्ञान पाइये हैं। वहांसे काललब्धितैं निकसि दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चोइन्द्रिय, असैनी पंचेंद्रिय इन तिर्यंच पर्यायनिमें हू याके सुणना समझनेयोग्य मति-श्रुतज्ञान ही नहीं हुआ जिससे कि उपदेशादि सुनकर विचारपूर्वक हित अहितको जाण सके। यहांतक तो सम्यग्ज्ञानकी योग्यता ही नहीं। कदाच सैनी पंचेंद्रिय भी हुआ तो सम्यग्ज्ञानकी प्राप्तिका कारण मिलना दुर्लभ। कोईक तिर्यंचके उपदेशादिकका निमित्त पाय काल-लब्धितैं सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति होय है तौ भी महाव्रतादि धारण करि मुक्तिसाधनकी पूर्ण योग्यता नहीं। ये सर्व पर्यायें उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं।

यहांतक तो सम्यग्ज्ञानरूपी नौकाकी प्राप्ति ही दुश्वार है। इस मनुष्य जन्ममें सम्यग्ज्ञानरूपी नौकाकी प्राप्तिकी योग्यता है सोहू द्रव्य-क्षेत्र काल भाव बाह्य निमित्त विना बणे नहीं, इसलिये ज्ञान भावना मनुष्य पर्याय विना और पर्यायनिमें मुक्तिप्राप्तिके योग्य पासकै नहीं। और ज्यादा पर्यायें यह जीव ऐसी ही पावै है कि जहां इस ज्ञान-नौकाको पहचान भी न सकै। इसे नहीं पाकर ही प्राणी संसार—समुद्रमें वहा जाय है सो निकल सकै नहीं। अतः अनादिकालतैं बोधिलाभ हुआ ही नहीं, इस ही लिये अद्यापि संसारचक्रसे निवृत्त हुआ नहीं।

आगें—कैसा ज्ञान ग्रहण करनेयोग्य है सो कहैं हैं—

णाणं जिणेहि भणियं फुडत्थवाईहि विगयलेवेहि।
तं चिय णिस्संदेहं णायव्वं गुरुपसाएण ॥ २ ॥

ज्ञानं जिनैः भणितं, स्फुटार्थवादिभिः विगतलेपैः ।
तदेव निस्संदेहं, ज्ञातव्यं गुरुप्रसादेन ॥ ३ ॥

चौपाई ।

स्पष्टवाद निर्लेपी जोई, जिनवर कथित ज्ञान जो होई ।
निःशंकित होके उर धारो, गुरु उपदेश थकी निरधारो ॥ ३ ॥

अर्थ—गुरुके उपदेशसे ज्ञान जानना चाहिये । कैसा ज्ञान जो-कि तीर्थङ्कर केवलीसे कहा हो । तीर्थङ्कर धर्मतीर्थ चलानेवाले होते हैं औरका कहा प्रमाण नहिं; क्योंकि प्रमाणिक वक्ताके वचन प्रामाणिक होते हैं । तीर्थङ्कर स्पष्ट रूपमें पदार्थोंका वर्णन करते हैं । क्योंकि स्पष्ट वर्णन विना मंदबुद्धि समझे नहीं ।

तीर्थंकर कर्मोंके लेपसे रहित हैं, कर्म लेप दूर हुए विना सर्वज्ञ नहीं हो सक्के। सर्वज्ञ विना स्पष्ट कैसे जाने। स्पष्ट जाने विना यथार्थ उपदेश नहीं हो सक्का। इसलिये उनहीका कहा हुआ ज्ञान सन्देह रहित है।

प्रश्न—इस पंचमकालमें ऐसे वक्ता सो कोई है नहीं फिर सत्यार्थ कैसे समझे ?

उत्तर—उनके द्वारा कहे ग्रन्थोंके अनुकूल हो उसे सत्यार्थ समझो।

प्रश्न—आजकल जो ग्रन्थ देखे जाते हैं वह तो छद्मस्थ आचार्योंकी कृति है।

उत्तर—अंतिम तीर्थंकर वर्द्धमानने जो व्याख्यान किया ताकी गणधर व ऋषियोंने द्वादशांग रूप रचना की जिसके बाद अनुक्रमसे ज्ञानकी कमी होती गई। वर्द्धमान भगवानके ६४३ वर्ष बाद पुष्पदंत आचार्य तथा ६६३ वर्ष पीछे भूतबलि आचार्य हुए उन्होंने ग्रन्थरूप

रचना कर पुस्तकाकार किया क्योंकि ऐसा किये विना ज्ञान नष्ट हो जाता।

और भी अनेक आचार्योंने अनेक ग्रन्थ रचे सो भी उतनी विस्तृत रचना नहीं किन्तु संक्षेपमें साररूपसे द्वादशांगके अनुकूल रचे इसलिये परिपाटी अपेक्षा सर्वज्ञ कथित ही है।

प्रश्न—ग्रन्थ तो अन्य धर्मवालोंके भी हैं वह भी सर्वज्ञकथित बताते हैं फिर कैसे निर्णय किया जाय।

उत्तर—ग्रन्थोंको मिलान करके जो ग्रन्थ युक्ति अनुमान प्रत्यक्षसे बाधित नहीं हो सो प्रमाण मानो। निर्णय बुद्धिसें विचारे तो सांच झूठ छिपै नहीं, इसप्रकार निर्णय करो और सर्वज्ञकथित ग्रहण करो।

कंदप्पदप्पदलणो डंभविहीणो विमुक्कवावारो।
उग्गतवदित्तगत्तो जोई विण्णाय परमत्थो ॥ ४ ॥

कन्दर्पदर्पदलनो दम्भविहीनो विमुक्तव्यापारः।
उग्रतपोदीप्तगात्रः योगी विज्ञेयः परमार्थः ॥ ४ ॥

चौपाई।

काम गर्वके दलनेवाले, गत व्यापार कपट सब टाले।
उग्र तपोंसे दीपित काया, सो वक्ता ज्ञानी मुनिराया ॥ ४ ॥

अर्थ—कामरहित ज्ञान पूजा कुल जाति पराक्रम वैभव तप शरीर इन आठ प्रकारके मदोंसे रहित उग्र तपोंसे दीप्तिमान शरीरधारी ऐसे गुरु ही ज्ञानके उपदेशके लिये समर्थ हैं।

भावार्थ—कामी मानी कपटी रागद्वेषयुक्त गुरु सत्यार्थ उपदेश नहीं दे सक्के इसलिये ग्राह्य नहीं।

पंचमहव्वयकलिओ मयमहणो कोहलोहभयचत्तो ।
एसो गुरुत्ति भण्णइ तम्हा जाणेह उवएसं ॥ ५ ॥

पंचमहाव्रतकलितो मदमथनः क्रोधलोभभयत्यक्तः ।
एष गुरुरिति भण्यते तस्मात जानीहि उपदेशं ॥ ५ ॥

चौपाई ।

शुद्ध महाव्रत पांचो धारे, क्रोध लोभ मद मोह निवारे ।
परिषह जीत भय स्मर खोई, ऐसे गुरु उपदेशक होई ॥ ५ ॥

अर्थ—शुद्ध महाव्रतसे युक्त दूर हुए हैं। काम क्रोध लोभ भय चिंता जिनके, ऐसे गुरुका उपदेश सुनो। क्योंकि स्वयं व्रत रहित क्रोधी लोभी मायावी डरपोक चिंतावान यथार्थ उपदेश नहीं दे सके।

आगे ध्यानका वर्णन करैं हैं——

पत्तोवएससारो जोई जइ णवि जिणेइ णियचित्तं ।
तो तस्स ण थाइ थिरं झाणं मरुपहयपत्तंव ॥ ६ ॥

प्राप्तोपदेशसार, योगी यदि नैवं जयति निजचित्तं ।
तदा तस्य न स्थायते स्थिरं ध्यान मरुप्रहतपत्रमिव ॥ ६ ॥

चौपाई ।

सार देशना योगी पाके, निज आत्मामें निज मन लाके ।
नहिं रोकै तो मन चल होई, पवन वेगतें पत्ते ज्योंई ॥ ६ ॥

अर्थ—उपरोक्त ऐसे गुरुसे प्राप्त किया है उपदेशका सार जिसने ऐसा योगी आत्मामें अपने चित्तको नहीं रोकै तो निश्चल ध्यान आत्मचिंतारूप नहीं होता, पवनवेगमें पत्तेकी तरह।

भावार्थ—सच्चे गुरुसें उपदेश लेकर योगी आत्मचिंतवन विषै चित्तको लगावे नहीं तो पवनसे पत्तेकी तरह स्थिर नहीं रहै।

झाणेण विणा जोई असमत्थो होइ कम्मणिड्डहणे।
दाढाणहरविहीणो जह सीहो वरगयंदाणं ॥ ७॥

ध्यानेन विना योगी असमर्थो भवति कर्मनिर्दहने।
दंष्ट्रानखरविहीनो यथा सिंहो वरगजेंद्राणां ॥ ७ ॥

चौपाई।

ध्यान विना ध्याता नहिं होई, कर्म दहनको समरथ कोई।
नख दाढों बिन केहरि जैसें, गज घातन समरथ नहिं तैसें ॥७॥

अर्थ—जैसे नख और डाढ़ोंके विना सिंह मदोन्मत हस्तियोंको नाश करनेमें असमर्थ होता है तैसें ध्यानके विना योगी कर्मोंके नाश करनेमें असमर्थ होता है।

भावार्थ—आत्मध्यान विना कर्मनाश होते नहीं।

तम्हा तडिव्वचवलं णियचित्तं जोइणा जिणेयव्वं।
जियचित्तं णियझाणं होइ थिरं बद्धसलिलंव ॥ ८ ॥

तस्मात् तडिद्वद् चपल निजचित्ते योगिना जेतव्यं।
जितचित्त निजध्यान भवति स्थिर बद्धसलिलमिव ॥ ८ ॥

चौपाई।

मन चंचल चपलाकी नांई, ता मनको वश करहु सांई।
बांधे विन जिम जल स्थिर नांही, मन वश विन ध्यान न हो स्थायी ॥८॥

अर्थ—क्योंकि योगियोंको विजलीके समान चञ्चल चित्तको जीतना चाहिये। जब ही ध्यान बन्धे हुए जलकी तरह स्थिर होता है।

भावार्थ—मन चंचल है सो आलंबन विना एक जगह स्थिर नहीं रहता सोई आत्मानुशासनमें कहा है—

छन्द शिखरिणी।

अनेकान्तो ही है फल कुसुम शब्दार्थ जिसमें।
अरु वाचा पत्ते बहुत नय शाखा लसत ज्हां॥
घनी है ऊँचाई जड़ दृढ़ मतिज्ञान जिसका।
रमावे विद्वान् या श्रुत तरु विषै चित्त कपिको॥ १७० ॥

ध्यानके योग्य स्थान।

गिरिकंदरविवरसिलासयेसु मठमंदिरेसु सुण्णेसु।
णिद्दंसमसयणिज्जणठाणेसु झाणमब्भसह॥ ९ ॥

गिरिकन्दराविवरशिलाशयेषु मठमंदिरेषु शून्येषु।
निर्दंशमशकनिर्जनस्थानेषु ध्यानमभ्यसत॥ ९ ॥

चौपाई।

गिरि कंदर बिलसिल मठमांही, कोटर घर सुने बन ठांही।
दंश मंश अरु नहि नर जावें, निरुपद्रव स्थानकमें ध्यावें॥ ९ ॥

अर्थ—पर्वत गुफा बिल सिला तथा मठमंदिरोंमें शून्य वनोंमें डांस मच्छररहित मनुष्य संचार रहित ऐसे स्थानोंमें ध्यानका अभ्यास करो।

भावार्थ—ध्यानके लिये ऐसा स्थान हो जहां ध्यान भंगके कारण बाधा उपद्रवकी संभावना न हो।

ध्यानके भेद।

झाणं चउप्पयारं भणंति वरजोयणो जियकसाया।
अट्टं तह य रउद्दं धम्मं तह सुक्कझाणं च॥ १० ॥

ध्यानं चतुःप्रकारं भणति वरयोगिनः जितकषायाः।
आर्त्तं तथा च रौद्रं धर्मं तथा शुक्लध्यानं च॥ १० ॥

चौपाई।

आर्तरौद्रध्यान दुठ होई, धर्म शुक्ल दोय शुभ होई।
ध्यान भेद यों यह है प्यारा, निष्कषाय मुनिवर कह सारा॥ १० ॥

अर्थ—जिन्होंने कषायें जीत ली हैं ऐसे योगीश्वर आर्त-रौद्र, धर्म-शुक्ल च्यार प्रकारका ध्यान कहते हैं।

दुर्ध्यान वर्णन—

तंबोलकुसमलेवणभूसणपियपुत्तचिंतणं अट्टं ।
बंधणदहणवियारणमारणचिंता रउद्दंमि ॥ ११ ॥

तांबूलकुसुमलेपनभूषणप्रियपुत्रचिंतनं आर्तं ।
बंधनदहनविदारणमारणचिंता रौद्रे ॥ ११ ॥

चौपाई ।

पान फूल लेप रु सुत माता, चिंतै सो हो आर्त हि ध्याता ।
बंधन जालन चीरण घाता, चिंतै सो हो रौद्र हि ध्याता ॥११॥

अर्थ—पान, पुष्प, सुगंधिलेपन, भूषण, प्यास, पुत्रादिका चिंतवन आर्तध्यान है। और बांधना, जलाना, चीरना, मारना इत्यादि चिंतवन रौद्रध्यान है। अन्यत्र इस प्रकार कहा है—

अपनी प्रिय वस्तु जो धन कुटुम्बादि तिनके वियोगमें उनके मिलनेके लिये वारम्बार चिंतवन करना इष्टवियोग आर्तध्यान है। अपनेको दुखदायी दरिद्रता शत्रु आदिके संयोगमें वियोगके लिये चिंतवन करना अनिष्ट संयोग आर्तध्यान है। अपने शरीरमें रोग इत्यादि होनेपर दूर होनेके लिये वारवार चिन्तवन करना पीड़ा चिंतवन आर्तध्यान है और भावी सांसारिक सुखोंके लिये चिन्तवन करना निदान बंध आर्तध्यान है। आर्त अथवा दुखके लिये ध्यान अथवा चिंतवन सो आर्तध्यान, यह ध्यान छठे गुणस्थान तक होय है, निदान बन्धके विना।

और रौद्रध्यान भी च्यार प्रकार हैं। १—हिंसानन्द कहिये

किसी जीवके बांधने मारने आदिमें आनंद मानना या ऐसे विचार स्वयं करे । २—मृषानंद कहिये झूंठमें आनंद माने या खुद झूंठ विचारादि करें । ३—चौर्यानंद कहिये चोरीमें, चोरोंकी कथाओंमें आनंद माने या स्वयं विचार करना आदि । ४—परिग्रहानंद कहिये धनधान्यादिकमें आनंद माने या इसीके विचारमें रहना यह पंचम गुणस्थान तक होता है. छठेमें हो तो संयम छूट जाय. यह दोनूं दुर्ध्यान पापबन्धके कारण त्याज्य है ।

धर्मध्यान, शुक्लध्यान—

सुत्तत्थमग्गणाणं महव्वयाणं च भावणा धम्मं ।
गयसंकप्पवियप्पं सुक्कज्झाणा मुणेयव्वं ॥ १२ ॥

सूत्रार्थमार्गणानां महाव्रतानां च भावना धर्म ।
गतसंकल्पविकल्पं शुक्लध्यानं मन्तव्य ॥ १२ ॥

चौपाई ।

सूत्र अर्थ मार्गण व्रत माना, धर्मध्यानमें यह सब ध्याना ।
नहिं संकल्प विकल्प जु होई, शुक्लध्यान जानो तुम सोई ॥ १२ ॥

सूत्रार्थ कहिये द्वादशांगरूप जिनवाणी तथा ४ गति, ५ इंद्रिय, ६ काय, १५ योग ३ वेद, २५ कषाय, ७ संयम, ८ ज्ञान, ४ दर्शन, ६ लेश्या, २ भव्याभव्य, ६ सम्यक्त, २ सैनी—असैनी, २ आहारक—अनाहारक ऐसे १४ मार्गणा ५ महाव्रतोंकी २५ भावना तथा १४ गुणस्थान, १२ भावना, १० धर्म इत्यादि चिंतवन धर्मध्यान है । संकल्प विकल्प रहित आत्मचिंतवन शुक्लध्यान है । सो धर्मध्यानके भी च्यार भेद है । जिनेन्द्रकी आज्ञाका चिंतवन—आज्ञाविचय—१२ कर्मोंके उदय किनर कर्मोंसे कैसे कैसे आते हैं. उनसे

क्या क्या कष्ट होते हैं इनसे छूटनेके उपाय इत्यादि चितवन—अपाय विजय—२। कर्मोंके विपाक फलका विचार करना, किस जातके बंधका कैसा उदय होता है, तीव्र मंदादि विचारना—विपाक विचय—३। तीन लोकके आकारका, समवशरणादि रचनाओंका, परमेष्ठीवाचक मंत्रोंकी कमलादि आकृतिमें रचनाका चितवना इत्यादि। संस्थान विचय—४। यह च्यार प्रकार धर्मध्यान है।

शुक्लध्यान च्यार प्रकार है। १—पृथक्त्ववितर्क विचार। जिसमें जुदा जुदा श्रुतका विचार नाम बदलना। भावार्थ—इस ध्यानमें शब्दसे शब्दांतर, अर्थसे अर्थांतर, योगसे योगांतर पलटते रहते हैं। यह ध्यान बारवें गुणस्थान तक होता है और मन वचन काय तीनों योगोंमें बदलता रहता हैं।

२—एकत्ववितर्क अविचार। ध्यानमें शब्दसे शब्दांतर, अर्थसे अर्थांतर, योगसे योगांतर नहिं हो तो मोहनीय कर्म क्षीण होते ही जिस योगमें जिस शब्दमें जिस अर्थ पदार्थमें ध्यान था वहीं स्थिर होजाता है। यह ध्यान तेरवें गुणस्थान तक रहता है।

३—सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति। मन वचन कायकी क्रियाको कर सूक्ष्म काय योगमें स्थिर करना यह तेरवें गुणस्थानके अन्तमें आयुकर्मके समान शेष अघातियाओंकी स्थिति करनेके लिये समुद्घात करनेके बाद अथवा अघाति चतुष्क समान स्थितिवाले हों तो विना समुद्घात किये ही तेरवेंके अन्तमें सूक्ष्म काययोगमें आते हैं अर्थात् योग निरोधके समय सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यान होता है।

४—व्युपरतक्रियानिवर्ति। तेरवेंके लगते ही चौदवें अयोग

गुणस्थानमें जब कि श्वासोश्वासादि सूक्ष्मकाय योगकी क्रिया भी रुक जाती है तब होता है ।

किस ध्यानसे कौन गति बंधनी है सो कहते हैं—

तिरियगई अट्टेण णरयगई तह रउद्दझाणेण ।
देवगई धम्मेणं सिवगइ तह सुक्कझाणेण ॥ १३ ॥

तिर्यग्गतिः आर्तेन नरकगतिः तथा रौद्रध्यानेन ।
देवगतिः धर्मेण शिवगतिस्तथा शुक्लध्यानेन ॥ १३ ॥

चौपाई ।

हो तिर्यंच आर्त मृति होई, रौद्र थकी नारक गति सोई ।
धर्मध्यानतें सुरगति जावै, शुक्लध्यानतें शिवगति पावै ॥ १३ ॥

अर्थ—आर्तध्यानतैं जीवके तिर्यंच गति बन्धे है, रौद्रध्यानतैं नरकगति, धर्मध्यानतैं देवगति व शुक्लध्यानतैं मोक्ष पावै है ।

अट्टरउद्दं झाणं तिरिक्खणारयदुक्खसयकरणं ।
चइऊण कुणह धम्मं सुक्कज्झाणं च किं बहुणा ॥ १४ ॥

आर्तरौद्रं ध्यानं तिर्यग्नारकदुःखशतकरणं ।
त्यक्त्वा कुरु धर्मं शुक्लध्यानं च किंबहुना ॥ १४ ॥

चौपाई ।

आर्तरौद्रतैं दुर्गति पाओ, दुःखमयी तातैं मत ध्याओ ।
धर्म शुक्ल सुखकर ही जानो, तातैं ध्यान दोय मन ठानो ॥ १४ ॥

अर्थ—आर्तध्यानतैं तिर्यंचगति होती है, रौद्रध्यानतैं नरकगति होती है और वहां सैकड़ों दुःखोंकी प्राप्ति होती है इसलिये इन दोनों दुर्ध्यानोंको छोड़कर सुखकारी धर्मध्यानको ग्रहण करो। बहुत कहा कहैं ।

भावार्थ—आर्त रौद्रध्यान दुखकर हैं अतः हेय हैं। धर्मध्यान शुक्लध्यानतैं स्वर्ग मोक्ष मिलता है अतः उपादेय है। धर्मध्यान भी संसारका कारण है परन्तु परम्पराय मुक्तिका कारण है, अतः उपादेय है।

अब धर्मध्यानकी विधि कहते हैं—

सामाइयं जिणुत्तं पढमं काऊण परमभत्तीए।
चिंतह धम्मज्झाणं गलइ मलं जेण सहसत्ति ॥ १५ ॥

सामायिकं जिनोक्तं प्रथमं कृत्वा परमभक्त्या।
चिंतय धर्मध्यानं गलति मलं येन सहसा इति ॥ १५ ॥

चौपाई।

प्रथम परम भुक्तियुत करहू, जिन भाषित सामायक धरहू।
धर्मध्यान चिंतो मनमांही, तातैं पाप मैल झड़ जांही ॥ १५ ॥

अर्थ—प्रथम ही भगवान जिनेन्द्रकी कही हुई सर्व सावद्य विरतिरूपा अर्थात् संपूर्ण क्रियाओंके त्यागपूर्वक सामायिक परमभक्तिके साथ ग्रहण करि धर्मध्यानका चिंतवन करै जिससे कि पापमल शीघ्र नाश हो। सो ही पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहा है—

रागद्वेषको त्यागकर, सर्व साम्य अवधार।
तत्व प्राप्तिका मूल अति, सामायिक धरि सार ॥
सामायिक युत जीवके, पाप त्याग ही होय।
चरण मोहके उदय भी, अतः महाव्रत जोय।
समता स्तुति अरु वंदना, प्रतिक्रम प्रत्याख्यान।
कायोत्सर्ग जु षट् करो, आवश्यक पहिंचान ॥

सुत्तत्थधम्ममग्गणवयगुत्तीसमिदिभावणाईणं।
जं कीरइ चिंतवणं धम्मज्झाणं च इह भणियं ॥ १६ ॥

सूत्रार्थधर्ममार्गणाव्रतगुप्तिसमितिभावनादीनां ।
यत् क्रियते चिंतवनं धर्मध्यानं च इह भणितं ॥ १६ ॥

चौपाई ।

सूत्र अर्थ अरु मार्गण जोई, गुप्ति समिति भावन है सोई ।
इनका चिंतवन हो जिस मांही, धर्मध्यान मानो यह थाई ॥१६॥

अर्थ—सूत्रार्थ और १४ मार्गणा; उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य यह दश धर्म; अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रहत्याग ऐसे पांच महाव्रत; मन, वचन, काय तीनोंका वशमें करना सो ३ गुप्ति; ईर्या, भाषा, ऐषणा, आदाननिक्षेपण, आलोकितपान भोजन यह पांच समिति; अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ इन १२ भावनाओंका चिंतवन सो धर्मध्यान है। तथा और भी जिनोक्त वर्णन है। प्रथमानुयोग, करुणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग इनका विचारना इत्यादि सब धर्मध्यान हैं।

जीवाइ जे पयत्था कायव्वा ते जहट्ठिया चेव ।
धम्मज्झाणं भणियं रायद्दोसे पमुत्तूणं ॥ १७ ॥

जीवादयो ये पदार्था ध्यातव्याः ते यथास्थिताः चैव ।
धर्मध्यानं भणितं रागद्वेषौ प्रमुच्य ॥ १७ ॥

चौपाई ।

जीव अजीव तत्व सब ध्यावै, रागद्वेष तामें नहिं लावै ।
दृढ मन कर ध्यावे इम जोई, धर्मध्यान जानो यह सोई ॥१७॥

अर्थ—जीवादिक पदार्थ जैसें अवस्थित हैं तैसें रागद्वेष रहित उनके स्वरूपको विचारना सो भी धर्मध्यान है।

झाएह तिप्पयारं अरुहं कम्मिधणाण णिद्दहणं।
पिंडत्थं च पयत्थं रूवत्थं गुरुपसाएण॥ १८॥

ध्यायत त्रिप्रकारं अर्हं कर्मेंधनानां निर्दहन।
पिंडस्थं च पदस्थ रूपस्थ गुरुप्रसादेन॥ १८॥

चौपाई।

पिंडस्थ रु पदस्थित भी जोई, रूपस्थिति तीजा जो सोई।
इम ये तीनों जानों ध्याना, कर्म जलानेमें परधाना॥ १८॥

अर्थ—पिंडस्थ कहिये प्रतिमारूप, पदस्थ कहिये मंत्ररूप, रूपस्थ कहिये समवशरण विभूति सहित जिनेन्द्रका चिंतवन, ऐसे तीन प्रकार कर्मोंको भस्म करनेवाला ध्यान है सो गुरुके प्रसादसे जानना।

पिंडस्थ ध्यान।

णियणाहिकमलमज्झे परिट्ठियं विप्फुरंतरवितेयं।
झाएह अरुहरूवं झाणं तं मुणह पिंडत्थं॥ १९॥

निजनाभिकमलमध्ये परिस्थित विस्फुरद्रवितेजः।
ध्यायते अर्हद्रूप ध्यान तत मन्यस्व पिंडस्थं॥ १९॥

चौपाई

सूर्य तेज जिम दीप्तिधारी, वीतराग अर्हंत चितारी।
नाभिकमल स्थित चिंते जोई, ध्यान पिंडस्थ जानिये सोई॥१९॥

अर्थ—निज नाभिकमलमें स्थित सूर्य समान तेज कांति धारी अरहंतकी मूर्तिका चिंतवन करना सो पिंडस्थ ध्यान है।

भावार्थ—अपने नाभिकमल विषै भगवान अरहन्तकी अत्यन्त तेजकर व्याप्त नासादृष्टि लगाये परिग्रह कामादि विकार रहित पद्मासन व खड्गासन परम वीतराग भावकर युक्त पद्मासनका ध्यान करै तो ऐसे स्वरूप विचारै। बांम पांवपर दक्षिण पांव स्थापन किये उसपर

वाम हस्तपर दक्षिण हस्त धरै, नासादृष्टि धरे, निश्चल अत्यन्त वीतराग स्वरूप निर्लेप निर्मल रूपका चितवन करै और खड्गासन मूर्तिका ध्यान करै तो एडीमें तो परस्पर च्यार अंगुलका अन्तराल और दोनों भुजाएं लंबायमान अरतोंके हाथोंसे च्यार अंगुलका अन्तर, नहि ज्यादा ऊंचे, नहीं ज्यादा नीचे है गर्दन मस्तक, नासिकापर दृष्टि, ओष्ट नहीं अधिक मुद्रित नहीं अधिक खुले, वीतराग ध्यानस्थ ऐसे अर्हत्परमेष्ठीको अपने नाभिकमलमें स्थापित कर ध्यान करै ।

झायह णियकुरमज्झे भालयले हिययकंठदेसम्मि ।
जिणरूवं रवितेयं पिंडत्थं मुणह झाणमिणं ॥ २० ॥

ध्यायत निजकुरमध्ये भालतले हृदयकण्ठदेशे ।
जिनरूपं रवितेजः पिंडस्थं मन्यस्व ध्यानमिदं ॥ २० ॥

चौपाई ।

कंठ ललाट और कर मांहि, इन स्थानोंमें कमल रचा हीं ।
यथाजात जिनवर छबि ध्यावे, पिंडस्थिति सोहू नर पावै ॥२०॥

अर्थ—सूर्य तेज समान दीप्तिमान जिन प्रतिमा तुल्य जिनेंद्रका रूप ललाटमें अथवा कंठमें हाथमें यथाजात रूप अर्थात् माताके उदरसे निकला जिस रूप नग्न, इन स्थानोंमें ध्यानमें चितवन करै सो भी पिंडस्थ ध्यान है ।

पदस्थ ध्यानका वर्णन—

अट्ठमवग्गचउत्थं सत्तयवग्गस्स वीयवण्णेण ।
अक्कंतमुवरि सुण्णं सुसंयुयं मुणह तं तच्चं ॥ २१ ॥

अष्टमवर्गचतुर्थं सप्तमवर्गस्य द्वितीयवर्णेन ।
आक्रांतमुपरि शून्यं सुसंयुतं मन्यस्व तत्त्वं ॥ २१ ॥

चौपाई।

अष्टम वर्ग चतुर्थम लेओ, सप्तमका दूजा युत भेओ।
ई मात्रा युत धरहु बिंदू, हो पदस्थ ह्रीं युत बिंदु ॥ २१ ॥

अर्थ—आठवें वर्गका चोथा अक्षर सातवें वर्गका दूसरा अक्षरसे आक्रांत ऊर्ध्व शून्य बीज जो ईकार इनसे युक्तका ध्यान करो अर्थात् आठवां वर्ग श ष स ह तामें चोथा (ह) सातवां वर्ग य र ल व जिसका द्वितीय अक्षर (र) करि दबावे युक्त करै तब ह्र तिसमें बीजाक्षर ई स्वर बिंदुयुक्त किये चंद्रयुक्त (ह्रीं) इस मंत्रका ध्यान करना पदस्थ ध्यान है।

एयं च पंच सत्तय पणतीसा जहकमेण मियवण्णा।
झायह पयत्थझाणं उवइट्ठं जोयजुत्तेहि ॥ २२ ॥

एक च पंच सप्त पंचत्रिंशत् यथाक्रमेण मितवर्णाः।
ध्यायत पदस्थध्यान उपदिष्टं योगयुक्तैः। २२ ॥

चौपाई।

एक पांच वर्णी जु होई, सात और पैंतीस हु सोई।
ध्यान पदस्थ हि भेद पिछानो, आतमध्यानी कह यूं मानो ॥२२॥

अर्थ—एक पांच सात पैंतीस अक्षरवाले अध्यात्मध्यानी योगियों करि कहे हुए मंत्र यथाक्रमसें ध्याना पदस्थ ध्यान है।

भावार्थ—एकाक्षरी ॐ अथवा ह्रीं पंचाक्षरी अर्हद्भ्यो नमः अथवा अ सि आ उ सा अथवा नमः सिद्धेभ्य। सप्ताक्षरी णमो अरहन्ताणं अर्हत्सिद्धेभ्यो नम। पैंतीस अक्षरी—णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए साहूणं जो कि यह पंचपरमेष्ठीके वाचक हैं तिनका ध्यान करना पदस्थ ध्यान है। अरहन्त अशरीर आचार्य उपाध्याय साधु, इनके आदि अक्षरसे अ सि आ उ सा

पञ्चपरमेष्ठी वाचक है और अरहन्त अशरीर, आचार्य, उपाध्याय, मुनि इनके प्रथमाक्षर अ आ उ म् इनके व्याकरणसे संधि साधनेसे अ अ का आ होता है फिर आ आ में अगला अक्षर लोप करनेपर आ और उ की संधि ओ और म् ॐ पञ्चपरमेष्ठी वाचक है और मंत्र स्पष्ट पंचपरमेष्ठी वाचक है ही ।

मुणिसंखा पंचगुणा खणवाई तह य पवणगयणंता ।
एदे य धवलवण्णा कायव्वा झाणमग्गेण ॥ २३ ॥

मुनिसंख्या पंचगुणा......तथा च पवनगतानताः ।
एते च धवलवर्णा कर्तव्याः ध्यानमार्गेण ॥ २३ ॥

चौपाई ।

पांच सात गुणते जो पावै, पांच पांच गुण इक द्वय ध्यावै ।
धवल रंग चितन जो ध्यावै, ध्यान मार्ग है यह सब सारै ॥२३॥

अर्थ—सातसे गुणित पांच पैंतीस अक्षरी उपरोक्त णमोकार मंत्र पांचसे गुणित पांच पच्चीस अक्षरी ॐ अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुपञ्चपरमेष्ठिभ्यो नमः और १० अक्षरी ॐ दो अक्षरी सिद्ध ऐसे भी ध्यान मार्गसे ध्यान करनेसे पदस्थ ध्यान होता है । सो ही द्रव्य संग्रहमें नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्तिने कहा है । पणतीस सोल छप्पण, चदु दुग मेगं च झवह झाएह । परमेट्ठि वा चयाणं अण्णं च गुरु वएसणे णिरदो ३५—१६—६—५—४—२—१ एक अक्षर रूप मंत्र पंचपरमेष्ठी वाचक है जिनका ध्यान करै । और भी गुरु उपदेशित ध्यान करै, षोडसाक्षरी अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः षडाक्षरी ॐ नमः सिद्धेभ्यः । चतुरक्षरी ॐ नमोस्तु अथवा अरहन्त, शेष ऊपर कह चुके ।

णिसिऊण पंचवण्णा पंचसु कमलेसु पंचठाणेसु।
झाएइ जहकमेणं पयत्थझाणं इमं भणियं ॥ २४ ॥

निक्षिप्त्वा पंचवर्णान् पंचसु कमलेषु पंचस्थानेषु।
ध्यायति यथाक्रमेण पदस्थध्यानं इदं भणितं ॥ २४ ॥

चौपाई।

मस्तक मुख ललाट उर मांही, नाभियुक्त पांचों स्थल मांही।
मंत्र कल्पना करके ध्यावै, ध्यान पदस्थ यों भी नर पावै ॥२४॥

अर्थ—पांचों वर्णोंको क्रमसे मस्तक, ललाट, मुख, हृदय, नाभिमें पांच वर्णके कमल रचकर उनमें स्थापित कर ध्यान करना सो भी पदस्थ ध्यान कहा है।

भावार्थ—णमोकार मंत्रके पांच पदोंको वा पांच अक्षरी मंत्रको पांचों स्थान पांच वर्गके कमल रच उनमें स्थापित कर ध्यान करना भी पदस्थ ध्यान है।

सत्तक्खरं च मंतं सत्तसु ठाणेसु णिससुसयवण्णं।
सिद्धसरूवं च सिरे एयं च पयत्थझाणुत्ति ॥ २५ ॥

सप्ताक्षरं च मंत्र सप्तसु स्थानेषु... ।
सिद्धस्वरूप शिरसि एतच्च पदस्थध्यानमिति ॥ २५ ॥

चौपाई।

कंठ हाथ मुख सातों स्थलमें, वर्ण सातके सात कमलमें।
सप्ताक्षरी मंत्र जो भजिहैं, धुर पदस्थ कर्म मल तजिहैं ॥ २५ ॥

अर्थ—सप्ताक्षरी मंत्रको मस्तक, ललाट, मुख, कण्ठ, हृदय, नाभि इन सात स्थानोंमें सात रङ्गके कमल रच उनमें क्रमसे सातों अक्षरोंको स्थापन करै और मस्तकपर सिद्ध स्वरूपके साथ ध्यान करै सो भी पिंडस्थ ध्यान है।

अट्ठदलकमलमज्झे अरुहं वेढेह परमवीयेहिं ।
पत्तेसु तहय वण्णा दलंतरे सत्तवण्णा य ॥ २६ ॥
गणहरवलयेण पुणो मायाविएण धरयलकंतं ।
जं जं इच्छह कम्मं सिज्झइ तं तं खणद्धेण ॥ २७ ॥

अष्टदलकमलमध्ये अर्हं वेष्टय परमबीजैः ।
पत्रेषु तथा च वर्णा दलांतरे सप्तवर्णाश्च ॥ २६ ॥
गणधरवलयेन पुनः मायाबीजेन धरातलाक्रांतं ।
यद्यत् इच्छति कर्म सिध्यति तत्तत् क्षणार्धेन ॥ २७ ॥

चौपाई

अर्हं बीच कर्णीमें धारै, पत्रोंमें बीजाक्षर सारै ।
मंत्र सप्तवर्णी दल बारै, आगे और सुणो विस्तारै ॥ २६ ॥
गणधर वेष्टित फिर सो होई, माया बीज मयी कू सोई ।
दाबै पृथ्वी मंडलसें ही, अर्द्ध पलकमें सिद्धी लेही ॥ २७ ॥

अर्थ—अष्टदल कमलके बीचमें अर्हं लिखकर बीजाक्षरोंको पत्रोंमें लिखे और सप्ताक्षरी मंत्रको वेष्टित करै फिर गणधरोंको वलयाकार वेष्टित करै फिर माया बीजाक्षरोंसे वेष्टित करै तो क्षणार्द्धमें सर्व कार्य सिद्ध हो । (सूचना) मायाबीज, बीजाक्षर, पृथ्वीमंडल यह मंत्रशास्त्रकी संज्ञा है इसलिये इन अक्षरोंका खुलासा नहीं किया गया । इसलिये वाचकगण क्षमा करैं । यह गणधरवलय यंत्र है ।

रूपस्थ ध्यान—

घणघायिकम्महणो अइसइवरपाडिहेरसंयुत्तो ।
झाएह धवलवण्णो अरहंतो समवसरणत्थो ॥ २८ ॥

घनघातिकर्ममथनः अतिशयवरप्रातिहार्यसंयुक्तः ।
ध्यायत धवलवर्णो अरहंतो समवसरणस्थः ॥ २८ ॥

चौपाई ।

घाती कर्म विना जिनराई, अतिशय प्रातिहार्य युत सांई ।
समवसरणमें स्थित को ध्यावै, सो रूपस्थ सु ध्यान कहावै ॥ २८ ॥

अर्थ—सघन घातिया कर्म विनाशकर चोतीस अतिशय, आठ प्रातिहार्य सहित समवसरणमें विराजमान धवलवर्ण अर्हत् परमेष्ठीका चित्तमें ध्यान करना सो रूपस्थ ध्यान है। अन्य ग्रन्थोंमें रूपातीत ध्यानका भी वर्णन किया है उसमें अशरीर, अमूर्तीक, ज्ञान, दर्शन, चैतन्य इत्यादि सिद्धस्वरूपका ध्यान सो रूपातीत ध्यान बताया है।

अप्पा तिविहपयारो बहिरप्पा अंतरप्प परमप्पा ।
जाणइ ताण सरूवं गुरुउवदेसेण किंबहुणा ॥ २९ ॥

आत्मा त्रिविधप्रकारो बहिरात्मा अंतरात्मा परमात्मा ।
जानीहि तेषां स्वरूपं गुरूपदेशेन किंबहुना ॥ २९ ॥

चौपाई ।

अंतरात्म बहिरात्म दोई, तीजा परमातम भी होई ।
तीनोंका अब वर्णन यों है, समझ देशना हितकर जो है ॥ २९ ॥

अर्थ—बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा ऐसे तीन प्रकारके आत्मा हैं। इनका स्वरूप गुरु उपदेशसे अच्छीतरह समझो। और बहुत उपदेशसे क्या ?

मयमोहमाणसहिओ रायादोसेहि णिच्च संतत्तो ।
विसएसु तहा गिद्धो बहिरप्पा भण्णए एसो ॥ ३० ॥

मदमोहमानसहितः रागद्वेषः नित्यं संतप्तः ।
विषयेषु तथा गृद्धः बहिरात्मा भण्यते एष ॥ ३० ॥

चौपाई ।

मोह गर्व मायायुत होई, राग द्वेष कर युत जो होई ।
विषयनिमें बहु राचै जोई, बहिरातम होता है वोई ॥ ३० ॥

अर्थ—मद मोह (मिथ्यात), मान, रागद्वेषसे सदा व्याप्त विषयोंमें सदा आसक्त ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव बहिरात्मा है।

भावार्थ—आठ प्रकारके मदयुक्त पंचप्रकार मिथ्यात्वयुक्त अनंतानुवंधी राग, अनन्तानुबन्धी द्वेष. मायावी. अत्यन्त विषयलोलुपी जीव बहिरात्मा है। यहां मोह शब्दसें मिथ्यात्व ग्रहण किया है, क्योंकि चारित्रमोहनीयकी प्रकृति मान मायादि पृथक् बताई है।

धम्मज्झाणं झायदि दंसणणाणेसु परिणदो णिच्चं।
सो भणइ अंतरप्पा लक्खिज्जइ णाणवंतेहिं ॥ ३१ ॥

धर्मध्यानं ध्यायति दर्शनज्ञानयोः परिणतः नित्यं।
सः भण्यते अंतरात्मा लक्ष्यते ज्ञानवद्भिः ॥ ३१ ॥

चौपाई।

धर्म धरै दशविध है जोई, सम्यग्दर्शन ज्ञान युत होई।
आत्मज्ञानयुत हैं जो कोई, अंतरात्म जानों वह होई ॥ ३१ ॥

अर्थ—धर्म ध्यानको ध्याता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानमें सदा परिणति रखता है उसको ज्ञानवान अन्तरात्मा कहते हैं।

भावार्थ—पहले कहे हुए च्यार प्रकार धर्मध्यानका चिन्तवन करै। निःशंकितादि आठ अंग सहित आठ मद, तीन मूढ़ता, षट् अनायतन रहित शुद्ध तत्वार्थश्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। संशय विभ्रम मोह रहित अष्टांग सम्यग्ज्ञानका धारी सो सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा है। सोई पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहा है—

अष्ट अंगका स्वरूप—

दोहा।

जिनमत वस्तु समूहको, अनेकांत दरशाय।
किमु सत्य असत्य है, ऐसें नहिं शंकाय ॥ २३ ॥

इस भवके विभवादिको, परभव चक्री आदि।
एकांती पर समय भी, इच्छत नांहि प्रमादि ॥ २४ ॥

क्षुधा तृषा शीतादि जो, नानाविध हैं भाव।
विष्टा आदि पदार्थमें, विचिकित्सा न लगाव ॥ २५ ॥

शास्त्राभास सु लोकमें, समय देवता भास।
इनमें तत्व विचार कर, मूरख दृष्टि विनाश ॥ २६ ॥

उपगूहन गुणके लिये, मार्दवादिको धार।
चेतन धर्म बढाइये, ढकि परदोष विचार ॥ २७ ॥

कामरु क्रोध मदादिसें, न्याय मार्ग चल जांहि।
स्थिति करना निज धर्ममे, सो थितिकरण कहांहि ॥ २८ ॥

शिव-सुख कारण दयामय, धर्म अहिंसा धार।
अरू सहधर्मिनके विषैं, वत्सलता उर धार ॥ २९ ॥

रत्नत्रयके तेजसे, चेतन करहु प्रकाश।
पूजन दान तपादिसें, धर्म प्रभाव विकाश ॥ ३० ॥

ऐसे अष्ट अंग युक्त सम्यग्दृष्टी होता है सो ही रत्नकरंड-श्रावकाचारमें भी कहा है—

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम्।
त्रिमूढापोढमष्टांगं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥ ४ ॥

अर्थ—तीन मूढता रहित, आठ अंग सहित, आठ मद रहित, सत्यार्थ देव शास्त्र गुरुका श्रद्धान सम्यग्दर्शन है जिसमें आठ अंगका स्वरूप ऊपर बताया। अब तीन मूढताको कहते हैं—

आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम् ।
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥ २२ ॥

अर्थ—नदी समुद्रमें स्नान करना, बालू रेत पत्थरोंका ढेर करना, पर्वतसे गिरना, अग्नि प्रवेश, इनमें धर्म समझना लोकमूढता कहलाती है।

वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसः ।
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥ २३ ॥

अर्थ—भला होनेकी कामनासे राग द्वेषसे मैले देवताओंकी जो उपासना है वह देवमूढता कही है।

सग्रन्थारम्भहिंसानां संसारावर्तवर्तिनाम् ।
पाखण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाखण्डिमोहनम् ॥ २४ ॥

अर्थ—परिग्रह, आरंभ और हिंसा सहित संसारचक्रमें पड़े हुए पाखंडियोंका सत्कार करना पाखंडमूढता है।

भावार्थ—परिग्रही, आरंभी, स्वयं संसारमें फंसे हुएसे दूसरोंका उद्धार क्या करेंगे ?

अब देवके लक्षण—

क्षुत्पिपासाजरातंकजन्मान्तकभयस्मयाः ।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः सः प्रकीर्त्यते ॥ ६ ॥

अर्थ—क्षुधा प्यास बुढापा रोग जन्म मरण भय मान राग द्वेष और मोह यह जिनके नहीं हैं और न से चिंता पसीना और ग्लानि हास्य कामादि जिनके नहीं हैं सो आप्त अर्थात् सच्चा देव कहा जाता है।

सत्यार्थ शास्त्रका लक्षण—

आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकम् ।
तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥ ९ ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए लक्षणवाले आप्त द्वारा कहा हो, वादी प्रतिवादीसे अखंडित जो कि प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणसे अबाधित, सत्यार्थ तत्वोंका उपदेशवाला, प्राणीमात्रका हितकारी, कुमार्गका खंडन करनेवाला शास्त्र होता है।

सत्यार्थ गुरुका लक्षण।

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी सः प्रशस्यते॥ १०॥

अर्थ—विषयवासना रहित, आरम्भ परिग्रह रहित, ज्ञान ध्यान और तपमें आसक्त ऐसा वह तपस्वी सराहनीय है। ऐसे सत्यार्थ आप्त आगम गुरु श्रद्धानपूर्वक पूजनीय है।

आठ मद।

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः॥ २५॥
स्मयेन यो न्यानत्येति धर्मस्थान् गर्विताशयः।
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं न धर्मो धार्मिकैर्विना॥ २६॥

अर्थ—ज्ञान पूजा कुल जाति बल ऋद्धि तप शरीर, इन आठोंके आश्रित घमंड करना मद है। जो पुरुष घमंडसे अन्य धर्मात्माओंका अपमान करता है वह अपने धर्मका अपमान करता है। क्योंकि धर्मात्माओंके विना धर्म नहीं होता। ऐसे आठ अंग सहित और आठ मद तीन मूढ़ता रहित, सच्चे देव शास्त्र गुरुका और इनके द्वारा उपदेशित सत्यार्थ तत्वोंका श्रद्धान कर आत्मस्वरूपको प्राप्त होना ही सम्यक्त है। सम्यक्त सहित जीव अन्तरात्मा है। सम्यग्ज्ञानके लिये पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहा है —

दोहा।

सम्यक्ती निज हितेच्छु, निर्मल सम्यग्ज्ञान।
आम्नाय अरु युक्तितैं, भजै तजै कुज्ञान॥ ३१॥
दर्शन सहभावी तदपि, पृथ गाथा घन इष्ट।
इनमें लक्षण-भेदतैं, जुदा ज्ञान उपदिष्ट॥ ३२॥
कारज सम्यग्ज्ञान है, कारण सम्यग्दर्श।
तातैं ज्ञान अराधना, दर्शन अन्त प्रदर्श॥ ३३॥
दीपक और प्रकाश जिम, एक काल उत्पाद।
तिम दर्शन अरु ज्ञानका, कारण कारज साध॥ ३४॥
सदनेकान्ती तत्वमें करहु अध्यवसाय।
तजि संशय भ्रम मोहको, आतमरूप लखाय॥ ३५॥
शब्दार्थो भय काल नति, सोपधान बहुमान।
युक्त अनिह्नव आठ युत, धारो सम्यग्ज्ञान॥ ३६॥

ऐसें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानयुक्त जीव अन्तरात्मा है।

परमात्माका स्वरूप—

दुविहो तह परमप्पा सयलो तह णिक्कलोत्ति णायव्वो।
सयलो अरुहसरूवो सिद्धो पुणु णिक्कलो भणिओ॥ ३२॥

द्विविधः तथा परमात्मा सकलः तथा निष्कलः इति ज्ञातव्यः।
सकलो अर्हत्स्वरूपः सिद्ध पुनः निष्कलः भणितः॥ ३२॥

चौपाई।

सकल शरीर सहित अरहंता, नकल सिद्ध हां तन विनशंता।
यह दोनों परमातम जानो, है कृतकृत्य नहीं कछु छानो॥ ३२॥

अर्थ—सो परमात्मा सकल कहिये शरीर सहित और निकल कहिये शरीर रहित दो प्रकार हैं। सकल परमात्मा घातिया कर्म चतुष्टय रहित अनन्तदर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य, चतुष्टययुक्त समवसरण लक्ष्मी सहित अरहन्त है। और निकल परमात्मा शरीर रहित चरम शरीरते कुछ न्यून और अनंत गुणोंका पुंज अतिन्द्रिय सुखयुक्त उर्द्धगमन स्वभावतें सिद्धालयमें यावत् गमन सहकारी धर्मद्रव्य है तहां लोकके अन्त उर्द्धभागमें निश्चल स्थित हैं। उत्पाद व्यय-ध्रौव्ययुक्त सुख सत्ता अवबोध चेतन इन चार प्राणोंयुक्त जीवत्वगुण सहित है।

जरमरणजम्मरहिओ कम्मविहीणो विमुक्कवावारो।
चउगइगमणागमणो णिरंजणो णिरुवमो सिद्धो॥ ३३॥

जरामरणजन्मरहितः कर्मविहीनः विमुक्तव्यापारः।
चतुर्गतिगमनागमनः निरंजनो निरुपमः सिद्धः॥ ३३॥

चौपाई।

जन्म जरा मृति रोग विनाशी, कर्म क्रिया विन शिवके वासी।
निश्चलरूप निरंजन सोई, गमनागमन रहा नहिं कोई॥ ३३॥

अर्थ—बुढ़ापा मरण जन्मरहित कर्मरहित व्यापार रहित गमनागमन रहित निरंजन रूप रहित सिद्ध है सो ही परमात्मा हैं।

परमट्ठगुणेहिं जुदो अणंतगुणभायणो णिरालंबो।
णिच्छेओ णिब्भेओ अणंदिदो मुणह परमप्पा॥ ३४॥

परमाष्टगुणैः युक्तः अनंतगुणभाजनः निरालंबः।
निश्छेदः निर्भेदः आनंदितो मन्यस्व परमात्मा॥ ३४॥

चौपाई।

परमारथ गुण आठों धारै, गुण अनंत युत शुद्ध निहारै।
निर आलंब सुखी स्वाधीनो, ऐसे परमातम लय कीनी॥ ३४॥

अर्थ—सम्यक्त दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अव्याबाध, अगुरुलघुत्व इन आठ परमार्थ गुणों सहित और अनेक गुणों युक्त निःसहाय और नित्य आनन्दमयी सिद्ध परमात्मा जानो ।

इस परमात्माके ध्यानका स्वरूप—

अप्पा दिणयरतेओ णाणमओ णाहिकमलमज्झत्थो ।
णिच्चिंतो णिद्दंदो झायव्वो झाणजुत्तीए ॥ ३५ ॥

आत्मा दिनकरतेजाः ज्ञानमयो नाभिकमलमध्यस्थः ।
निश्चिंतो निर्द्वंद्वः ध्यातव्यः ध्यानयुक्त्या ॥ ३५ ॥

चौपाई ।

सूर्य तेज जिम ज्ञान प्रकाशी, नाभिकमल स्थित नित्य स्वरूपी ।
गत चिंता निर्द्वंद अनी है, परमातमको ध्याय यती ह ॥ ३५ ॥

अर्थ—सूर्य समान ज्ञान तेज युक्त चिंता रहित कर्मद्वंदरहित ऐसे परमात्माको नाभिकमलमें स्थापित करि योगीश्वर ध्यान करै ।

पाहाणम्मि सुवण्णं कट्ठे अग्गी विणा पओएहिं ।
ण जहा दीसंति इमो झाणेण विणा तहा अप्पा ॥ ३६ ॥

पाषाणे सुवर्णं काष्ठे अग्नि विना प्रयोगैः ।
न यथा दृश्यंते इमानि ध्यानेन विना तथा आत्मा ॥ ३६ ॥

चौपाई ।

पत्थरमें जैसें है सोना, यथा काष्ठमें अग्नि होना ।
विना प्रयोगके नांहीं लखिये, ध्यान विना किम आतम परखिये ॥ ३६ ॥

अर्थ—जैसें पाषाणमेंसे सुवर्ण काष्टमें अग्नि विना प्रयोगके नहीं दीखते तैसें ध्यान विना आत्माके दर्शन नहीं होते । ध्यानसे ही आत्माका शुद्ध प्रतिभास होता है ।

किं बहुणा सालंबं झाणं परमत्थएण णाऊणं ।
परिहरह कुणह पच्छा झाणब्भासं णिरालंबं ॥ ३७ ॥

किं बहुना सालंब ध्यानं परमार्थेन ज्ञात्वा ।
परिहर कुरु पश्चात् ध्यानाभ्यास निरालबं ॥ ३७ ॥

चौपाई

ध्यान अलंबनको हु त्यागो, निरालंब ध्यानमें लागो ।
बहु प्रलापसे क्या है योगी, निरालंबसे सिद्धि होगी ॥ ३७ ॥

अर्थ—बहुत कथनसे क्या, परमार्थरूपसे आलंबन ध्यानका भी त्यागकर निरालंब ध्यानका अभ्यास करो ।

भावार्थ—आलंब ध्यान तो ध्यानका अभ्यास बढ़ानेके लिये है. पुण्य बन्धका कारण है। पाप क्रियाओंसे मनको रोक. पुण्य क्रियाओंमें लगानेके लिये हैं। फिर अभ्यास करते करते पुन्यानुबंधी धर्मध्यानको छोड़ कर्म निर्जराका कारण निरालंब शुक्लध्यानमें लगाना परमार्थ ध्यान है।

जह पढमं तह विदियं तदियं णिस्सेणियव्व चडमाणो ।
पावइ समुच्चठाणं तह जोई थूलदो सुण्णं । ३८ ॥

यथा प्रथमं तथा द्वितीयं तृतीयं निश्रेणिकायां चटमानः ।
प्राप्नोति समुच्चस्थान तथा योगी स्थूलतः शून्यं ॥ ३८ ॥

चौपाई ।

एक दोय त्रयको क्रम रीती, उच्च स्थान पावे रिपु जीती ।
तैसे स्थूल ध्यानको ध्याता, क्रमसे शून्य ध्यानको पाता ॥ ३८ ॥

अर्थ—जैसें क्रमसे एक दो तीन इत्यादि शत्रुओंको जीत सर्व साम्राज्यका स्वामी होता है उस ही प्रकार आलंबन युक्त जो स्थूल ध्यान उसको ध्याता योगी क्रमसे शून्य ध्यानको भी ध्याने लगता है।

सुण्णज्झाणे णिरओ चइयणिस्सेसकरणवावारो ।
परिरुद्धचित्तपसरो पावइ जोई परं ठाणं ॥ ३९ ॥

शून्यध्याने निरतः त्यक्तनिःशेषकरणव्यापारः ।
परिरुद्धचित्तप्रसरः प्राप्नोति योगी परं स्थानं ॥ ३९ ॥

चौपाई ।

शून्य ध्यानमें रत वह योगी, दूर करै सब क्रिया त्रियोगी ।
रोकत चित्त वेग मन सारा, परम स्थान पावै भव पारा॥ ३९ ॥

अर्थ—संपूर्ण इन्द्रिय व्यापारको रोक कर अपने निज चित्तमें स्थिर हो चित्तके वेगको रोकता हुआ शून्य ध्यान—रत योगी परम स्थानको प्राप्त कर लेता है ।

अन्य अज्ञानियों द्वारा अन्यथा माने हुए शून्य ध्यानका निषेध—

सुण्णं च विविहभेयं भणियं अ बुहेहिं गयणमवियप्पं ।
तह दव्वपज्जभावं महइयारं च णिर रहियं ॥ ४० ॥

शून्यं च विविधभेदं भणितं च बुधैः गगनमविकल्पं ।
तथा द्रव्यपर्ययभावं.......................... ४० ॥

चौपाई ।

बिन पर्याय द्रव्यको ध्यानो, तेज रहित आकाश बखानो ।
ऐसे गगन ध्यानको कोई, मूर्ख अनेक शून्य कह सोई ॥ ४० ॥

अर्थ—कितने ही अज्ञानी बहुत प्रकारका बतलाते हैं जैसे द्रव्य पर्याय ज्ञानरहित तेजो विकार रहित कल्पना रहित आकाश तत्वका ध्यान करना शून्य ध्यान होता है ।

सत्यार्थ शून्य ध्यानका वर्णन करते हैं—

रायाईहि विमुक्कं गयमोहं तत्तपरिणदं णाणं ।
जिणसासणम्मि भणियं सुण्णं इय एरिसं मुणह ॥ ४१ ॥

रागादिभिः विमुक्तं गतमोहं तत्त्वपरिणतं ज्ञानं।
जिनशासने भणितं शून्यं इदमीदृशं मनुतं ॥ ४१ ॥

चौपाई।

राग द्वेष मोह तज ध्यावै, परिणति तत्त्वरूप ही पावै।
जिनमत वर्णित सो ही जानो, शून्य ध्यान ताको पहिचानो ॥४१॥

अर्थ—रागद्वेष मोह कहिये मिथ्यात रहित तत्त्व परिणतिरूप ध्यान ही जिनमतमें शून्य ध्यान कहा है।

इंदियविसयादीदं अमंततंतं अधेयधारणयं।
णहसरिसंपि ण गयणं तं सुण्णं केवलं णाणं ॥ ४२ ॥

इन्द्रियविषयातीतं अमंत्रतंत्रं अध्येयधारणाकं।
नभः सदृशमपि न गगनं तत् शून्यं केवलं ज्ञानं ॥ ४२ ॥

चौपाई।

इन्द्रिय विषयहू जामें नाही, मंत्र स्मर्ण नहिं तामधि पाही।
ध्येय धारणा स्मर्ण न तामें, केवल आत्मज्ञान ही तामें ॥ ४२ ॥

अर्थ—जिस ध्यानमें न तो इन्द्रिय विषय है न मंत्र स्मरण है। न कोई ध्यान करनेकी वस्तु है, न कोई धारणा स्मरण है, केवलज्ञान परिणति ही है सो शून्य ध्यान है।

णाहं कस्सवि तणओ ण को वि मे अत्थि अहं च एगागी।
इय सुण्णझाणणाणे लहेइ जोई परं ठाणं ॥ ४३ ॥

नाहं कस्यापि तनयः न कोपि मे अस्ति अहं च एकाकी।
इति शून्यध्यानज्ञाने लभते योगी परं स्थानं ॥ ४३ ॥

चौपाई।

न मैं किसीका, न मेरा कोई, मैं एकाकी।
पाता है योगी परमस्थानै, भीतर शून्य ज्ञान ध्यान ॥ ४३ ॥

अर्थ—न तो मैं किसीका पुत्र हूं और न मेरा कोई पुत्र है। मैं तो सिर्फ अकेला हूं। इस प्रकार विचार करके योगी शून्य ज्ञान ध्यानमें लीन होकर परमस्थान—श्री सिद्ध अवस्थाको प्राप्त होजाता है।

मणवणकायमच्छरममत्ततणुधणकणाइ सुण्णोऽहं ।
इय सुण्णझाणजुत्तो णो लिप्पइ पुण्णपावेण ॥ ४४ ॥

मनवचकायमत्सरममत्वतनुधनकणादिभिः शून्योऽहं ।
इति शून्यध्यानयुक्तः न लिप्यते पुण्यपापेन ॥ ४४ ॥

चौपाई ।

मन बच तन मत्सर माया, ममता मोह क्रोध सुत काया ।
जुदा आतम इनसे जब ध्यावे, पाप पुन्य बंधन नहिं पावे ॥ ४४ ॥

अर्थ—मन, वचन, तन, मत्सर, माया, ममता, मोह, क्रोध, पुत्र, काया इन सबसे आत्माको अलग ध्यावे तो योगी पाप पुण्यसे नहीं लिपता ।

सुद्धप्पा तणुमाणो णाणी चेदणगुणोहमेकोऽहं ।
इय झायंतो जोई पावइ परमप्पयं ठाणं ॥ ४५ ॥

शुद्धात्मा तनुमात्रः ज्ञानी चेतनगुणः अहम् एकः अहं ।
इति ध्यायन् योगी प्राप्नोति परमात्मकं स्थानं ॥ ४५ ।

चौपाई ।

मैं शुद्धातम ज्ञानमयी हूं, चित्स्वरूप एकमें ही हूं ।
ऐसे ध्याता योगी पावे, परम स्थान सुखिया हो जावे ॥ ४५ ॥

अर्थ—मैं शरीरप्रमाण शुद्ध आत्मा हूं, ज्ञानी हूं, चैतन्य गुणका धारी हूं, एकाकी हूं, इस प्रकार ध्यान करनेवाला योगी परम पदको प्राप्त होता है ।

भमिदे मणुवावारे भमंति भूयाइ तेसु रायादी ।
ताण विरामे विरमदि सुचिरं अप्पा सरूवम्मि ॥ ४६ ॥

भ्रांतेषु मनोव्यापारेषु भ्रमति भूतानि तेषु रागादिषु ।
तेषां विरामे विरमति सुचिरं आत्मस्वरूपे ॥ ४६ ॥

चौपाई ।

मन चर्चाके भ्रमने होवे, राग द्वेष शुचि खोवे ।
मनके रोके सोइ रुके ह, तब आतम थिरता प्रगटे है ॥ ४६ ॥

अर्थ—मनका व्यापार स्थान स्थान भ्रमण करता है तो उनमें रागादि भाव होते हैं. और जब मनका व्यापार रुक जाता है तो आत्मा निज स्वरूपमें ठहरता है ।

भावार्थ—जब मन जगह जगह अनेक वस्तुओंमे भटकता है तो इष्टमें राग अनिष्टमें द्वेष होता ही है और मनोव्यापार रुक जाता है, बाह्य पदार्थोंमे नहीं भटकता. तो फिर रागादि किसमें हो, क्योंकि कोई पदार्थ इन्द्रिय विषयमें इष्ट है, कोई अनिष्ट है । उनका निमित्त पाकर आत्माके साथ बंधे हुए कषाय कर्म उदय आते ही है । क्योंकि बाह्य पदार्थ रागद्वेषके तो कर्म हैं । इसलिये मनको इन्द्रिय विषयोंसे रोकनेके लिये आत्मानुशासनमें ऐसे कहा है—

छन्द शिखरिणी ।

अनेकांती ही हैं फल कुसुम शब्दार्थ जिसमें,
जहां वाणी पत्ते बहुत नय शाखा लसत है ।
घनी है ऊँचाई जड़ दृढ़ मतिज्ञान जिसकी,
रमावै विद्वान् या श्रुततरुविषै चित्त कपिको ॥१७०॥

प्रथम अवस्थामें चित्त विना आलंबन ठहरे नहीं इसलिये श्रुतज्ञानमें चित्तको लगावे, जिससे कि इन्द्रिय विषयोंसे चित्त रुक जावे तो पापबन्धका संवर होवे और पुन्यबंधका कारण धर्मध्यान रहै, ऐसे अभ्यास करते करते निरालंब ध्यानका अभ्यास हो जाय तब शुक्लध्यान होय है। वह ही शून्य ध्यान है। जो कि श्रेणी आरोहणकालमें होता है वह कर्म निर्जराका कारण है।

अब्भंतरा य किच्चा बहिरत्थसुहाइ कुणह सुण्णतणुं ।
णिच्चिंतो तह हंसो पुंसो पुणु केवली होई ॥ ४७ ॥

अभ्यंतर च कृत्वा बहिरर्थसुखानि कुरु शून्यतनुं ।
निश्चिंतस्तथा हंसः पुरुषः पुनः केवली भवति ॥ ४७ ॥

चौपाई ।

बाह्य सुखोंमें हो मध्यस्था, मनको रोक होय जो स्वस्था ।
भाव चिन्तका करे विनाशा, होता केवलज्ञान प्रकाशा ॥ ४७ ॥

अर्थ—बाह्य सुखोंमें मध्यस्थ भाव कर अभ्यंतर मनको रोककर तनको शून्य बनाता योगी भाव मनका नाश कर केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है अर्थात् द्रव्य मनके होते हुए भी मनोइंद्रियमें लब्धि और उपयोगरूप क्रिया नहीं रहती ।

जं परमप्पय तच्चं तमेव विसकामतत्तमिह भणियं ।
झाणविसेसेण पुणो णायव्वं गुरुपसाएण ॥ ४८ ॥

यत् परमात्मकं तत्त्वं तदेव विषकामतत्त्वमिह भणितं ।
ध्यानविशेषेण पुनः ज्ञातव्यं गुरुप्रसादेन ॥ ४८ ॥

चौपाई ।

तत्व परम आत्मा ही जानो, काम तत्व ताहीको मानो ।
ध्यान भेद और भी कोई, गुरु उपदेशित लीजे होई ॥ ४८ ॥

अर्थ—जो परमात्मा है वह ही काम तत्व है, अन्य कोई काम तत्व नहीं है। और भी गुरु उपदेशतै ध्यानके भेदोंका अभ्यास करो।

कामंधा मयमत्तो इंदियलुद्धा महावदोलाओ।

जइ पुण तं पयडत्थं अक्खिवज्जइ तहिमि खुप्पेइ ॥४९॥

कामांधः मदमत्तः इन्द्रियलुब्धः स्वभावदोलातः।

यदि पुनः त प्रकृतार्थे... ..... . ॥ ४९ ॥

चौपाई।

काम अंध मदमाते जीवा, पंचेन्द्रियमें रक्त सदीवा।

लोक अन्य योगादि दिखाते, सो संसार विषे भटकाते ॥ ४९ ॥

अर्थ—कामसे अंधे पांचों इन्द्रियोंके विषयके लोलुपी मदोन्मत जीव लोकनिको कुछ योगाभ्यासके आभासरूप साधनासे स्पष्ट कुछ चमत्कारादि दिखाते हैं, ते संसारिक विषयोंमें उन लोगोंको फंसाते हैं।

भावार्थ—मैस्मेरीजम प्राणायाम नेती धोती क्रिया जिसमें कि आंतै बाहर निकाल धोकर पीछी स्थापित करना इत्यादि चमत्कार दिखाके भोले लोगोंको भ्रममें डालकर दीर्घ संसारकी वृद्धि करै है, क्योंकि इन क्रियाओंमें कष्ट तो बहुत, लौकिक चमत्कारादिके सिवाय कुछ आत्महित होता नहीं। इन्द्रिय विषयकी ही पुष्टि होती है सो संसारवृद्धिका करण है। जैसे इन्द्रजालिया मुखमे लोह गोले निगल जाय पीछे काढले और रेशमका धागा नाकमें होकर मुंहमें निकाल ले तैसे है। शुभचन्द्र, भर्तृहरि दोनों भाई संसारमें विरक्त हो बनमें गये। शुभचन्द्र दिगम्बर साधु हुए। भर्तृहरि मार्ग भूल अलग हो गये सो रसकुप्पिकाके लोभमें पड़ गोरखनाथके शिष्य होकर २ रस-

कुप्पिका पाई । सो बड़े भाई शुभचन्द्र मुनिको ढुंढवाकर उनके पास भेजी । वह निष्पृही, उसने कुप्पिकाको पत्थर पर पटकवादी तब भर्तृहरि दूसरी कुप्पिका लेकर स्वयं गया तब उसको समझानेके लिये **ज्ञानार्णव** ग्रंथ बनाया। ध्यानका उसमें विशेष वर्णन है, सो वहांसे जानना ।

अन्तज्झाई कमलं बिंदु णादं च तहय चउभेयं ।
अण्णं चिय विण्णाणं सव्वं भवकारणं भणियं । ५० ॥

अन्तर्ज्योतिः कमल बिंदुर्नादं च तथा चतुर्भेदं ।
अन्यमपि विज्ञानं सर्वं भवकारणं भणितं ॥ ५० ॥

चौपाई ।

अंत ज्योति कमल बिंदी है, नादमयी सब भेदी है ।
और किते ही ध्यान प्ररूपा, सो जानो भव कारण रूपा ॥ ५० ॥

अर्थ—अन्तर्ज्योति, कमल, बिंदु, नाद ऐसे चार तरहका ध्यान अन्यमती कहैं सो सब संसारका कारण है ।

अब अवसर पाके और मतवालोंकी जो ध्यान प्ररूपणा है वह व्यर्थ है ऐसा दिखाते हैं—

सांख्य द्रव्यको सर्वथा नित्य अपरिणामी मानता है, इसलिये अपरिणामी आत्माकी ध्यानमें परिणति होना उसकी मान्यतासे विरुद्ध है । परिणति नहीं मानने पर सुख दुखका अनुभव स्मरण इच्छादि परिणतिके अभावसे तत्वका चितवन तो नित्यवादीके बन ही नहीं सकता । फिर ध्यान करनेसे क्या लाभ ? अतः नित्यवादी सांख्यकी ध्यान प्ररूपणा व्यर्थ है । और जो बौद्धादि सर्व वस्तु अनित्य क्षणभंगुर ही मानते हैं तो फिर ध्यानका प्रारम्भ तो किसने किया और फल

किसको मिले । और प्रति समय जीव बदलता गया तब एकाग्र चिंत-वन रूप ध्यान स्थिर रह नहीं सकता, क्योंकि स्थिर जीवमें ही स्थिर चिंतवन हो सकता है ।

अतः अनित्यवादी बौद्धकी ध्यान प्ररूपणा व्यर्थ है और देहा-त्मवादी चार्वाक जो कि पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाशके संयोगसे चैतन्य शक्ति अर्थात् एक कल बन जाती है उसके पुर्जोमें खराबी आ जानेसे चैतन्य शक्ति मिट जाती है, पुनर्जन्म नहीं होता, ऐसा माननेवाले चार्वाकको ध्यानकी आवश्यक्ता ही नहीं । ध्यान तो वह करे जो कि सुख दुःख स्वर्ग मोक्षादि रूप जीवकी अवस्था माने और विज्ञानवादियोंके ज्ञान मात्र ही वस्तु मानी है, जानने मात्र ही है, अन्य पदार्थ ही नहीं, तो ज्ञेयको जाने बिना ज्ञान ऐसी संज्ञा कैसे हुई ।

इसलिये ज्ञान ज्ञेय सम्बन्ध अनादि है और पदार्थ ज्ञान मात्र ही है तो ध्यान किसका करे । और जिनके मतमें जाननेवाला ज्ञान ही नहीं तो स्वका अनुभव कैसे हो । अनुभवके बिना ध्यान कैसे हो सकता है ।

अर्थात् अनुभव ही तो ध्यान है और ध्यानके बिना किये निराकुल होता नहीं तब ही जानने मात्र है । ऐसा माननेवाले विज्ञान-वादीकी ध्यान कल्पना व्यर्थ है और नैरात्मवादी जो शून्यवादी वह सर्व शून्य मानते हैं, उनके ध्याता ध्येय ध्यान ध्यानका फल वह सब कल्पना कछुएके केशोंसे आकाशके फूलोंकी माल गूंथना है ।

और द्वैतवादी नैयायिक वैशेषिक ईश्वर और जीवकी दो जाति मानते हैं और जीव कभी ईश्वर हो सकता नहीं अतः सदा सुखी रह

सकता नहीं तो फिर ध्यानसे क्या सिद्ध साधना है अतः द्वैतवादियोंके भी ध्यानप्ररूपण व्यर्थ है ।

और अद्वैतवादी जोकि तोमें मोंमें खड्गमें खेममें एक सर्वव्यापी ईश्वर है ऐसा मानते हैं. ईश्वर सिवाय दूसरा पदार्थ ही नहीं ऐसे वेदांती तिनके ध्यान करनेवाला ईश्वर ध्येय भी ईश्वर । और ईश्वर तो खुद ही है फिर उसमें ऊंचा और कौन है वैसा बननेके लिये ध्यान करै ऐसें अन्य एकांत मतवालोंके ध्यान प्ररूपणा व्यर्थ है ।

और जैन अनेकांती वस्तुको द्रव्य अपेक्षा नित्य. पर्याय अपेक्षा अनित्य, पृथ्वी जल आदि जनित शरीर है उसमें यह जीव अपने पूर्व बांधे शुभ अशुभ कर्मोंके उदयसे शरीरप्रमाण हो शरीरमें आयुकर्मके आधीन रहता है फिर नवीन आयुका बंधकर इस पर्यायको पूर्ण करके अन्य शरीर धारण करता है ।

अतः इस शरीर-अपेक्षा पुनर्जन्म नहीं क्योंकि वर्तमान शरीरमें यहीं रह जाता है । जीव निकलकर अन्य शरीरमें जन्म लेता है वह परभव है और सर्वज्ञके ज्ञानमात्र ही वस्तु है । ज्ञान बाह्य कोई वस्तु नहीं. भूत भविष्यत वर्तमान त्रिकालगोचर वस्तु सर्वज्ञके ज्ञान बाह्य नहीं । अतः उनके ज्ञानमात्र ही वस्तु है । ज्ञान ही है और कुछ नहीं. यह कथन नहीं बन सक्ता। जीव बिना सर्व पुद्गलादि पदार्थ अन्य हैं. इनका संबंध ही संसार है ऐसें तो शून्य भावना संभवे ।

और जो सर्वलोकमें कोई पदार्थ ही नहीं ऐसा कहलानेवाले भी तो हैं ।

शून्य कैसे मानते हैं और संसारी जीव कर्मकाट मुक्त हुए हैं

वह पहलेके हुए ईश्वरोंमें मिले नहीं, द्रव्य क्षेत्र काल भावतैं जुदे हैं, इस अपेक्षा तो संसारी ईश्वर नहीं होते ।

ईश्वर सरीखे गुण नवीन मुक्त जीवोंमें नहीं ऐसा मानना नहीं बन सक्ता सो गुणोंकी अपेक्षा सर्व मुक्त जीव समान हैं और द्रव्य क्षेत्र कालादिकी अपेक्षा भिन्न हैं और उनका ज्ञान सर्वत्र तोमें मोमें खड्गमें खंभमें लोक अलोकमें सर्वत्र व्याप्त है. इस पेक्षा तो सर्वत्र ईश्वर व्याप्त है ।

अद्वैतवादियोंकी तरह सर्वत्र ईश्वरहीका अंश है यह नहीं बन सक्ता ।

यह संसारी कर्मबंधतैं बंधे पुराने भोगते जाते हैं, नवीन बांधते जाते हैं तो इस दुःखके फंदेसे छूटनेके लिये ध्यान करै, क्योंकि जीवद्रव्यकी पर्यायें पलटती रहती हैं और ध्यानादिनैं याकी परिणति शुभाशुभ क्रियासे छूट शुद्धोपयोगमें लगाकर हेयको छोड़ उपादेयको ग्रहण कर कर्मकी निर्जरा करि सर्वथा कर्म मुक्त होकर अनंत गुणोंके धारक ईश्वर होते हैं, वहांसे विना कर्मके भव धरना नहीं । अतः जन्मना मरना नहीं, शरीर और इंद्रिय नहीं अतः आकुलता नहीं, स्वात्मजनित सुखोंका अनुभव करते तिष्ठ हैं । अतः अनेकांतमतमें ही ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यानका फल यह कथन हो सक्ता है, परवादि एकांतियोंके नहीं ।

ध्यानके साधनोंका वर्णन—

वयणियमसीलसंजमगुत्तीओ तह य धम्म रयणाई ।
लब्भंति परमझाणे अण्णं चिय जं च दुल्लभयं ॥ ५१ ॥

व्रतनियमशीलसंयमगुप्तयः तथा च धर्मः रत्नानि ।
लभ्यते परमध्यानेन अन्यदपि च यच्च दुर्लभं ॥ ५१ ॥

चौपाई ।

व्रत नियम शील जुत होई, संयम रत्नत्रय रत जोई ।
परम ध्यान तो वो ही पाई, और भांत दुर्लभ है भाई ॥५१॥

अर्थ—व्रत नियम शील संयम गुप्ति तथा धर्म रत्नत्रय इनके धारण किये परम ध्यान जो शुक्ल ध्यान तिसकी प्राप्ति सुलभ हो जाती है।

भावार्थ—इनके धारणतै निराकुलता होती है, इन्द्रियें वश होती हैं, तब चित्तकी एकाग्रता होती है इसलिये ध्यान करनेवालेके लिये इनका पालना आवश्यक है।

ध्यानसे स्वतः ही सांसारिक प्रयोजन भी सधते हैं—

णासाजोई जीहा अदंसण पंच तिण्णि एयाई ।
घोसा सवणे सत्तय चंदाच्छिदंमि दह दिवहा ॥ ५२ ॥

नासाज्योतिः जिह्वा अदर्शन पंच त्राणि एकानि
घोषा श्रवणे सप्त......दश दिवसानि । ५२ ।

चौपाई ।

नाक भर्मी जिह्वा नहिं सोई, पण त्रय इक दिन जीवे सोई ।
बहिरा होय सात दिन जीवा, छिद्रित चांद दिवस दस सीवा ॥५२॥

अर्थ—नासिकाका अग्र भाग दिखना बंद हो उससे पांच दिनमें मृत्यु होती है। भमि मध्य नहीं दीखै तो तीन दिनमें मृत्यु होती है। जिन्हा नहीं दीखै तो १ दिनमें मृत्यु होती है। कर्णमें एकाएक श्रवणशक्ति नहीं रहै तो ७ दिनमें मृत्यु होती है। चन्द्रमा छिद्र सहित

दीखै तो १० दिनमें मृत्यु होती है। (भमि किसी अंगका नाम है सो समझमें नहीं आया)।

पवन साधनादिसे शुभाशुभका वर्णन—

खिदिजलमरुहवि गयणं णाडीचक्कंमि पंच तत्ताइं।
एक्कोक्कं चिय घडियं कमेण पवहंति उदयाओ ॥ ५३ ॥

क्षितिजलमरुदपि गगन नाडीचक्रे पंचतत्त्वानि।
एकैकमपि घटिकं क्रमेण प्रवहंति उदयात ॥ ५३ ॥

चौपाई

पृथ्वी सलिल पवन अग्नी हैं, नभयुत पांच तत्व ये ही हैं।
एक एक घटि उदय इन्हींका. और कहु सुन भेद हु नीका ॥५३॥

अर्थ—पृथ्वी, जल, पवन, अग्नि, आकाश यह पांच तरहका पवन है, यह ही पांच नाडीचक्र हैं. इनका एक एक घडीका उदय रहता है।

उड्ढं वहदि य अग्गी अहो जलं तह तिरिच्छओ पवणो।
मज्झपुडंमि य पुहई णहोवि सव्वंपि पूरंतो ॥ ५४ ॥

ऊर्ध्वं वहति च अग्निः अधो जलं तथा तिर्यक् पवनः।
मध्यपुटे च पृथ्वी नभोपि सर्वमपि पूरयत् ॥ ५४ ॥

चौपाई।

अग्नी उर्द्ध निम्न गति पानी, पवन वेग तिरछी गति जानी।
पृथ्वी निश्चल मध्य निवासा. सर्व व्याप्त मानो आकाशा ॥५४॥

अर्थ—अग्नि तत्व ऊर्द्धगामी है, जल तत्व नीचेको बहता है। वायु तत्व तिरछा चलता है। पृथ्वी तत्व मध्यभागमें स्थिर रहता है। आकाश तत्व सर्वव्यापी है।

अग्गितियंगुलमाणो छंगुल पवणो य पुहइतच्चि उणो ।
चउवीसंगुलमाणो व वहइ सलिलं च तत्तम्मि ॥ ५५ ॥

अग्निः त्र्यंगुलमानः षडंगुल पर्वतः च पृथ्वीतत्त्वं पुनः ।
चतुर्विंशांगुलमानः वा वहति सलिल च तत्त्वे ॥ ५५ ॥

चौपाई ।

अग्नि तीन अंगुला जेती, पवन अंगुली छ हों तेती ।
पृथ्वी बारह अंगुल जानो, चतुर्वीस अंगुलि जल मानो ॥ ५५ ॥

अर्थ-अग्नि तीन अंगुल प्रमाण बहती है । पवन तत्व छै अंगुल बहता है । पृथ्वी बारह अंगुल जल २४ अंगुल बहता है ।

कंटुड्ढेण हु सासो णाहीउड्ढंमि मुणह तह पवणो ।
जाणुड्ढं तह पुहई सलिलं चिय पादउड्ढंति ॥ ५६ ॥

कण्ठोर्ध्वेन हि श्वासः नाभ्यूर्ध्वे मन्यस्व तथा पवनः ।
जान्वर्ध्वे तथा पृथ्वी सलिलमपि पादोर्ध्वमिति ॥ ५६ ॥

चौपाई ।

अग्नि कंठ उपरे होई, पवन नाभि पायु जल सोई ।
घुटने ऊपर पृथ्वी वासा, इन स्थानोंमें पवन निवासा ॥ ५६ ॥

अर्थ—कंठके उपरिम भागमें अग्नि तत्व, नाभिमें पवन तत्व, घुटनेके ऊपर पृथ्वी तत्व, गुदामें उपरिम भागमें जल तत्वका निवास है ।

अग्गि तिकोणो रत्तो किण्हो य पहंजणो तह वित्तो ।
चउकोणं पिय पुहवी सेय जलं सुद्धचंदाभं ॥ ५७ ॥

अग्निः त्रिकोणः रक्तः कृष्णश्च प्रभंजनस्तथा वृत्तः ।
चतुष्कोणं अपि पृथ्वी श्वेतं जलं शुद्धचंद्राभ ॥ ५७ ॥

चौपाई ।

अग्नि त्रिकोण लाल रंग भासा, पवन गोल अरु श्याम प्रकाशा ।
भूमि पीत चोकोर हि जानो, सलिल श्वेत चंद्राभ पिछानो ॥५७॥

अर्थ—अग्नि त्रिकोण लाल रंग, पवन गोलाकार श्यामवर्ण, पृथ्वी चोकोण पीतवर्ण, जल अर्द्ध चंद्राकार शीतल चंद्रसमान श्वेत होता है।

पुहई सलिलं च सुहं वामाणाडी य प्रवहणमाणमिणं।
तेयं पवणं च णहं असुहाइ इमाइ तत्ताइं॥ ५८॥

पृथ्वी सलिल च शुभ वामानाडी च प्रवहमानमिद।
तेजः पवनश्च नभः अशुभानि इमानि तत्त्वानि॥ ५८॥

चौपाई।

बहे वाम नाडी ते जानो, सो जल पृथ्वी सुखकर मानो।
अग्नि पवन नभ बहे दुखकारी, दक्षिण नाडी ते गति भारी॥५८॥

अर्थ—पृथ्वी और जलतत्व वाम नासिकामें प्रवेश करती सो शुभ अग्नि पवन आकाश वाम नासिकामें बहै सो अशुभ है, सो ही ज्ञानार्णवमें कहा है—

वामेन प्रविशंतौ वरुणमहेन्द्रौ समस्तसिद्धिकरौ।
इतरेण निःसरंतौ हुतभुक् पवनौ विनाशाय॥

जल और पृथ्वी यह वामनाडीसे प्रवेश करती सर्वसिद्धि करती है। अग्नि और वायु द्वितीयादक्षिण नाडीसे निकलती विनाशके लिये है।

इडपिंगलाण पवणं सीउण्हं तत्त परमयं णाओ।
ये छीओण सुहमसुहं जीवियमरणं च जाणेह॥ ५९॥

इडापिंगलयोः पवनः शीतोष्ण................।
.........शुभमशुभ जीवितमरण च जानाति॥ ५९॥

चौपाई ।

इडा पिंगला ठंढी ताती, जानो सुख दुखकर यों ख्याती ।
जीवन मरण आदि सब जोई, सो सब निश्चय यातैं होई ॥ ५९ ॥

अर्थ—इडा वाम नाडी, पिंगला दक्षिण नाडी और शीत उष्णको सम्यक् जानकर फिर उसमें सुख दुख जीवन मरणको जानो, ऐसैं संक्षेपसें वर्णन है । इसका विशेष वर्णन ज्ञानार्णवके उनतीसवें पर्वसें जानना चाहिये । यहां कथन करनेमें विस्तृत हो जायगा इसलिये नहीं लिखा है । ज्ञानार्णवसे इसमें कुछ अंतर है सो लौकिक बातोंमें है, परमार्थ वर्णनमें तो अंतर नहीं । ज्ञानार्णवमें विशेष वर्णन है ।

अब संसारकी अनित्यता बताते उपसंहार करैं हैं—

तडिदंबुबिंदुतुल्लं जीवियं तह जोव्वणं धणं धण्णं ।
णाऊणमिणं सव्वमथिरं परमप्पबुद्धीए ॥ ६० ॥

तडिदबुबिंदुतुल्य जीवन तथा यौवन धनधान्य ।
ज्ञात्वा इद सर्व अस्थिरं परमात्मबुद्ध्या ॥ ६० ॥

चौपाई ।

बिजली जल बुदबुद वत प्यारे, जोबन जीवन तन धन सारे ।
ऐसे सब अस्थिर पहचानो, परम ध्यानको करहु प्रमाणो ॥६०॥

अर्थ—बिजली अथवा जल बुदबुद समान जीवन, यौवन, धनधान्य सब अस्थिर हैं । इस प्रकार परमार्थ बुद्धिसे जानो ।

णियमणपडिवोहत्थं परमसरूवस्स भावणाणिमित्तं ।
सिरिपउमसिंहमुणिणा णिम्मवियं णाणसारमिणं ॥ ६१ ॥

निजमनःप्रतिबोधार्थं परमस्वरूपस्य भावनानिमित्त ।
श्रीपद्मसिंहमुनिना निर्मापित ज्ञानसारमिद ॥ ६१ ॥

चौपाई ।

निज मनके प्रतिबोधन काजा, परम आत्मध्यानका साजा ।
पद्मसिंह मुनिने यह कीना, ज्ञानसार यह ग्रन्थ नवीना ।।६१।।

अर्थ—निज मनको प्रतिबोधनेके लिये पद्मसिंह मुनिने परम स्वरूपका ध्यान करनेको यह ज्ञानसार ग्रंथ बनाया है ।

सिरिविक्कमस्स काले दशसयछासीजुयंमि वट्टमाणे ।
सावणसियणवमीए अंबयणयरम्मि कयमेयं ।। ६२ ।।

श्रीविक्रमस्य काले दशशतषडशीतियुते वर्तमाने ।
श्रावणसितनवम्यां अंबकनगरे कृतमेतत् ।। ६२ ।।

चौपाई ।

एक सहस अरु छयासी साला, विक्रम संवतका है काला ।
श्रावण सुदि नौमी दिन सोई, अंबढ नगर पूर्ण सो होई ।।६२।।

अर्थ—श्री विक्रम संवत् १०८६ में श्रावण सुदि ९ को अंबढ नगरमें बनाया ।

परिमाणं च सिलोया चउहत्तरि हुंति णाणसारस्स ।
गाहाणं च तिसट्ठी सुललियबंधण रइयाणं ।। ६३ ।।

परिमाणेन च श्लोकाः चतुःसप्ततिः भवंति ज्ञानसारस्य ।
गाथानां च त्रिषष्ठी सुललितबंधेन रचितानाम् ।। ६३ ।।

चौपाई ।

प्राकृत ग्रंथ षष्टी हैं गाथा, श्लोक अनुष्टुप बहत्तर साथा ।
ललित शब्द मय रचना कीनी, ज्ञानसार यह संज्ञा दीनी ।।६३।।

अर्थ—प्राकृत गाथा ६३ जिसका अनुष्टुप छन्दोंमें प्रमाण ७२ है । इसकी ज्ञानसार संज्ञा रखकर ललित शब्दोंमें रचना की है ।

चौपाई-ग्रंथ तथा टीकाकारकी प्रशस्ति।

दोहा।

गुलाबचन्द रु राजमल, सोनी गोत्री जोय।
दीना भाषा करनको, उपकृत बुद्धी होय ॥ १ ॥
प्राकृत गाथामय हुता, णाणसार यह ग्रन्थ।
पद्मसिंह मुनीन्द्रकृत, मोक्षमार्गका पंथ ॥ २ ॥
प्राकृतकी टीका हुती, संस्कृत भाषा मांहि।
दोनोंके आधारसे, कीना मुझ कृत नांहि ॥ ३ ॥
गद्य विषै कछु अधिकहू, अन्य ग्रंथ आधार।
धनालाल गुरु कृपातैं, पढ़कर लिखा विचार ॥ ४ ॥
कछु अयुक्त हू लिखा हो, शुद्ध करैं गुणवान।
बालक ठोकर खाय तो, पुचकारहिं धीमान ॥ ५ ॥
उन्नीसो सत्तर विषै, कार्तिक वदि तिथि नौमि।
त्रिलोकचंद्र पूरण किया, रहो जहांतक पढ़ुमि ॥ ६ ॥
सुबस बसो पुर केकड़ी, जहं सहधर्मी थोक।
औषध चट शाला तणी, मदत करैं सब लोक ॥ ७ ॥

॥ इति संपूर्णम् ॥

आध्यात्मिक ग्रन्थ।

प्रवचनसार टीका	५)
परमात्म प्रकाश टीका	४॥)
समयसार नाटक	१)
समयसार नाटक सटीक	५)
ज्ञान	४)
आत्म. सन टीका	२)
सहजानंद सोपान	१)
आत्मसिद्धि	१।)
निश्चयधर्मका मनन	१।)

दिगम्बर जैन पुस्तकालय-सूरत।